International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
March-April-2018, Volume-5, Issue-2 P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

डॉ. रामविलास शर्मा और मार्क्सवाद

डॉ0 देवेन्द्र सिंह
व्याख्याता हिन्दी
महारानी श्री जया राजकीय महाविद्यालय , भरतपुर राजस्थान

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कार्ल मार्क्स और उनके मित्र फ्रेंडरिक एंगेल्स ने मार्क्सवाद के सिद्धान्त का विकास किया। उन्होंने समाज और उसके इतिहास के वास्तविक अनुभवों का अध्ययन कर सामाजिक परिवर्तन और विकास के कतिपय सामान्य सिद्धान्तों का निर्धारण किया जो मार्क्सवाद के नाम से जाने जाते हैं। मार्क्सवाद ने आम आदमी की शोषण प्रक्रिया का पर्दाफाश कर उसके हित में सामाजिक परिवर्तन की एक ऐसी वैज्ञानिक प्रविधि प्रस्तुत की जो किन्हीं धार्मिक विश्वास और कोरी कल्पनाओं पर आधारित न होकर सांसारिक विकास के वास्तविक अनुभवों पर आधारित थी। यह सिद्धान्त संसार में अपनी वैज्ञानिकता और आम जनता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के चलते इतना लोकप्रिय हुआ कि उसने इतिहास, भाषा, साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में पूर्व प्रचलित अवधारणाओं की चूलें हिला दीं।

एमिल बर्न्स के अनुसार, "मार्क्सवाद मानव समाज का ऐसा सामान्य सिद्धान्त है जो नैतिकता के हवाई सिद्धान्तों पर आधारित न होकर सच्चाई पर आधारित है।" वे आगे लिखत हैं कि "इसलिए आज के समाज की सबको परेशान करने वाली बुराइयों और तकलीफों से मानवता को हमेशा के लिए छुटकारा दिलाने तथा समाज के एक उच्चतर रूप की स्थापना करके, सभी स्त्री–पुरुषों को अपना पूर्ण विकास में मदद देने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है।"[1] यह बात अलग है कि मार्क्सवाद अपनी भविष्यवाणी पूरी करने से पूर्व ही संसार के अधिकाँश भाग में राजनैतिक स्तर पर खारिज किया जा चुका है लेकिन इसका यह अर्थ लगाना भी अभी जल्दबाजी माना जायेगा कि वह संसार से पूरी तरह उठ गया है। **डॉ॰ रामविलास शर्मा** की अपनी अन्तिम साँस तक मार्क्सवाद के प्रति अड़िग आस्था थी और वह अकारण नहीं थी।

(i) डॉ. रामविलास शर्मा और मार्क्सवाद

□□**पृष्ठभूमि –** डॉ॰ रामविलास शर्मा का जन्म वैसवाड़े के अत्यन्त पिछड़े गाँव **ऊँच गाँव सानी** में हुआ था। वहाँ के निवासी खेती–किसानी पर निर्भर रहने के कारण घोर गरीबी, अशिक्षा और सामाजिक विषमता का जीवन जीने के लिए अभिशप्त थे। पिताजी की नौकरी के कारण डॉ॰ शर्मा को बचपन से ही झाँसी और लखनऊ जैसी जगह पर शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिला जहाँ उन्होंने गाँव से भिन्न

एक साधन सम्पन्न जीवन भी देखा। लखनऊ में पढ़ते समय उन्हें रेल्वे के लोको वर्कशॉप के मजदूरों के साथ रहने का भी अवसर मिला वहीं उन्हें मजदूर यूनियन की कार्यवाहियाँ भी देखने को मिलीं। लखनऊ में ही उनका परिचय मार्क्सवादी साहित्यकार और नेताओं से भी हुआ। एक तरह उनका परिवेश, उनके लिए मार्क्सवादी पृष्ठभूमि तैयार कर चुका थी। उस समय समाजवादी विचारधारा आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक उत्पीड़न के विरुद्ध शोषित और पीड़ित समाज के पक्ष में सुचिंतित दर्शन के रूप में विश्व एवं भारत के तमाम बुद्धिजीवियों को आकर्षित कर रही थी। ऐसी परिस्थितियों में यदि डॉ॰ रामविलास शर्मा अपने जीवन और साहित्य में मार्क्सवादी दर्शन को स्वीकार करते हैं तो यह अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

□□**मार्क्सवाद में आस्था** – अपने अध्ययन काल में ही डॉ॰ रामविलास शर्मा यह तय कर चुके थे कि वे साहित्य के माध्यम से देश–सेवा व समाज–सेवा के दायित्व का निर्वहन करने वाले हैं। साहित्य में उनकी मान्यताएँ दृढ़ थीं; समझ गहरी थी; मानवीय अस्मिता के प्रति उनकी पक्षधरता स्पष्ट थी। मार्क्सवादी जीवन दर्शन उन्हें आकर्षित करता था लेकिन **कम्युनिष्ट पार्टी** की नीतियाँ उन्हें पसन्द नहीं थीं। सन् 1940 के आस–पास वे प्रगतिशील आन्दोलन में शामिल हो चुके थे। इस सम्बन्ध में उनकी धारणा और इरादे स्पष्ट थे। उनकी स्वीकारोक्ति है कि – "प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन की शुरुआत संकीर्णतावाद से ही हुई थी। – प्रगतिशील लेखक संघ में शामिल होकर मार्क्सवाद के लिए लड़ा जा सकता है। यही सोचकर मैं शामिल हुआ।"[2] वे **'कम्युनिज्म के मानववाद'** से प्रभावित थे।[3] उनके अनुसार, "वैज्ञानिक भौतिकवाद का जन्म संसार को समझने और उसे बदलने के लिए, मानवजीवन को सुखी बनाने के लिए हुआ है।"[4] उनके लिए "मार्क्सवाद मात्र विचार नहीं है बल्कि एक भावशक्ति है जो भारत की वर्तमान स्थिति को समझने और बदलने का विश्वसनीय साधन है।"[5] वे इसे वैचारिक स्तर पर ही नहीं बल्कि संस्कार–रूप में स्वीकारने को आवश्यक मानते हुए लिखते हैं कि "जो अभिजात वर्ग में उत्पन्न हुए हैं और उस वर्ग के संस्कारों में पले हैं, उनके लिए मार्क्सवाद की बौद्धिक स्वीकृति काफी नहीं है, उन्हें अपने को आमूल परिवर्तित करना आवश्यक होता है जो एक अत्यन्त कठिन प्रक्रिया है।"[6] जो इस कठिन प्रक्रिया से नहीं गुजरता वह विषम परिस्थितियों में विचलन का शिकार हो सकता है।[7]

उन्होंने मार्क्सवाद को संस्कार के स्तर ग्रहण किया था उसी का परिणाम है कि **'रूस के विघटन'** जैसी विषम परिस्थिति में उनकी अडिग आस्था यथावत रहती है। "जब मार्क्स–एंगेल्स–लेनिन–स्टालिन

की प्रतिमाएँ तोड़ी जा रहीं थीं तब रामविलास शर्मा ने मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्टालिन की रचनाओं के आलोक में भारतीय इतिहास की समस्याओं पर विचार किया। शायद उनकी धारणा थी कि मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धान्तों से विचलन हो रहा है, अतः मार्क्सवाद के मूल पाठ को ओर लौटो।"[8] वे अन्त तक अपनी इसी मान्यता पर दृढ़ रहे कि "मार्क्सवाद ही सही जीवन दर्शन है।. . . समाज को समझने और बदलने तथा शोषण विहीन समाज–व्यवस्था का निर्माण करने के विज्ञान का नाम मार्क्सवाद है।"[9]

(ii) मार्क्सवाद की सीमाएँ और संशोधन

डॉ॰ रामविलास शर्मा जीवन भर जड़ अथवा यांत्रिक मार्क्सवाद का विरोध कर अपने अध्ययन व अनुभव के आधार पर मार्क्सवाद के नवीन क्षितिजों का उद्घाटन करते रहे। उन्होंने केदारनाथ अग्रवाल को एक पत्र में दृढ़ता के साथ लिखा था कि, "मार्क्स का विचार–क्षितिज निरन्तर बदल रहा था; यह बात मैंने गाँठ बाँध ली, और मार्क्स के अनुयायी होने का मतलब उनके सूत्रों को दोहराना नहीं है।"[10] वे मार्क्सवाद के निरन्तर विकासमान मानते थे। उनके अनुसार, "मार्क्सवाद बदलने का दर्शन है, इसलिए यह बदलने समझने की प्रक्रिया बराबर चला करती है। अगर कोई यह समझता है कि मार्क्स–एंगेल्स की विचारधारा का स्वयं विकास हुआ है, तो वह कच्चे किस्म का मार्क्सवादी है।"[11] वे "मार्क्स के निष्कर्षों में परिवर्तन को अपराध नहीं मानते थे बल्कि वैज्ञानिक अनुसंधान के बदले मार्क्सवादी विचारधारा को पूँजीवादी हितों के अनुकूल बनाने को अपराध मानते थे।[12] डॉ॰ नामवर सिंह ने उनकी इस विशेषता को रेखांकित करते हुए लिखा कि "डॉ॰ रामविलास शर्मा ने निर्मम आत्मसमीक्षा के क्रम में स्वयं अपनी मान्यताओं के विरोध के साथ ही साथ पूरी हिम्मत और ताकत से स्वयं मार्क्स और मार्क्सवाद की कोई मान्यताएँ ही नहीं; जरूरत पड़ने पर कम्युनिष्ठ पार्टियों की भी आलोचना की है।"[13] यही वह बिन्दु है जहाँ से उनका मार्ग अन्य मार्क्सवादियों से भिन्न, मौलिक और सार्थक होता चला गया। उनकी इस मौलिकता को कतिपय विद्वानों ने **'मार्क्सवाद से विचलन'** के रूप में देखा तो कुछ इसे ही सच्चा मार्क्सवाद मानते हैं। **डॉ॰ शिवकुमार** उनके संशोधनों को न तो गलत मानते हैं और न उन्हें उनका अन्तर्द्वन्द्व मानते हैं बल्कि उसे वैचारिक विकास के रूप में देखते हैं।[14]

उन्होंने न केवल मार्क्स, मार्क्सवाद और मार्क्सवादी पार्टी व संगठनों की सीमाएँ गिनाईं बल्कि मार्क्सवाद के विकास के लिए देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप संशोधन तथा अनेक प्रस्ताव भी प्रस्तुत किये जिनकी बदौलत डॉ॰ भरतसिंह जैसे मार्क्सवादी अध्येता यह मानते हैं कि "भारत में डॉ॰

रामविलास शर्मा का वही स्थान है जो यूरोप में मार्क्स–एंगेल्स का, रूस में लेनिन का, चीन में माओ का और हिन्द चीन में माओं का हो–ची मिन्ह के बौद्धिक पराक्रम का था। डॉ॰ शर्मा दुनिया में माओं के बाद पहले गैर समेटिक मार्क्सवादी दार्शनिक थे, जिन्होंने भारत और एशिया को केन्द्र में रखकर मार्क्सवाद को विकसित किया।"[15]

डॉ॰ रामविलास शर्मा ने 'ऐतिहासिक अनिवार्यता का सिद्धान्त', सर्वहारा की अतिक्रान्तिकारी भूमिका, किसानों को प्रतिक्रान्तिकारी मानना तथा आर्थिक विकास और तकनीकी श्रेष्ठता के यांत्रिक सम्बन्ध को मार्क्सवाद की सीमा के रूप में विश्लेषित किया है।[16] **डॉ॰ मैनेजर पाण्डेय** मानते हैं कि, 1955 के आस–पास वे अपनी अनेक मान्यताओं पर पुनर्विचार कर उन्हें संशोधित करते हैं। जिनमें संस्कृति के आर्थिक आधार, साहित्य और विचारधारा, जातीयता, सर्वहारा का अधिनायकत्व तथा गाँधी–नेहरू की भूमिका के मुद्दे उल्लेखनीय हैं। डॉ॰ पाण्डेय मानते हैं कि "मार्क्सवाद की सैद्धान्तिक मान्यताओं का खण्डन करने या दोहराने से अधिक महत्त्वपूर्ण है चिन्तन और लेखन में उनका व्यवहारिक प्रयोग करना। उन्होंने यह काम किया है। सिद्धान्त की शक्ति और सीमा का बोध व्यवहार में ही होता है। जो लोग गलत होने या गलत सामने जाने का खतरा उठाकर भी नए ढंग से सोचने का प्रयत्न करते हैं वही मार्क्सवाद के विकास में सहायक होते हैं।"[17]

भारतीय कम्युनिष्ट आन्दोलन की कमजोरियाँ भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं थीं। भारत में कम्युनिष्ट क्रान्ति न होने के कारणों को बताते हुए कहते हैं कि, "संक्षेप में मार्क्सवाद को न समझना एक कारण है, दूसरा कारण है भारत की परिस्थितियों को न समझना। तीसरा कारण है बहुत अच्छे–अच्छे प्रस्ताव पास करके भी उनको अमल में न लाना। यानी कथनी और करनी का भेद।[18] वे मार्क्सवाद के 'द्वन्द्ववाद' के स्थान पर 'अनेकान्तवाद' शब्द को उचित मानते हैं।[19] वे मार्क्सवाद को भारतीय पृष्ठभूमि में विकसित करने के लिए कहते हैं कि "मार्क्सवाद की व्याख्या बहुत तरह से की जाती है। उन सब व्याख्याओं का अध्ययन करना चाहिए। उनके साथ भारतीय दर्शन का, यहाँ के साहित्य और कलाओं का, यहाँ के इतिहास का अध्ययन करना चाहिए। . . .किसी भी देश की समस्याओं के लिए अन्तिम समाधान मार्क्सवाद में लिखे हुए नहीं है, उन्हें खोजना होगा।"[20]

कहने का अर्थ यह है कि डॉ॰ रामविलास शर्मा ने मार्क्सवाद को किसी साम्राज्यवादी – आयातित सामग्री या औपनिवेशिक मानसिकता के साथ ग्रहण नहीं किया बल्कि देश की बहुसंख्यक जनता के हित

में, देश की ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप विवेक की कसौटी पर परखकर ही स्वीकार किया था। जो अनुचित लगा उसे अस्वीकार करने में देर नहीं की और आवश्यकता होने पर किसी संशोधन से भी परहेज नहीं किया। यही उनकी विशिष्टता है, यही उनका अवदान है और यही उनकी पहचान है। मार्क्सवाद रहे न रहे लेकिन देश में डॉ॰ शर्मा के विचारों की उपेक्षा अब सम्भव नहीं है। यह बात अलग है कि अभी उन्हें पूरी तरह से समझने व स्वीकारने में वक्त लगेगा।

(iii) साहित्येतिहास के मार्क्सवादी आधार

डॉ॰ रामविलास शर्मा मूलतः आलोचक थे लेकिन उनकी आलोचनात्मक रचनाएँ नाम से साहित्येतिहास न होने के बावजूद अपने ऐतिहासिक दृष्टिकोण के कारण हिन्दी साहित्य का इतिहास ही मानी जाती रही है। सामाजिक–राजनैतिक स्तर पर मार्क्सवादी आस्था के चलते यह स्वाभाविक ही था कि उनकी साहित्येतिहास दृष्टि के निर्माण में मार्क्सवादी सिद्धान्तों की अहम् भूमिका हो। ''अपने विवादों द्वारा रामविलास जी ने जिस चिन्तन पद्धति का विकास किया, उसकी विशेषता है साहित्य की व्याख्या की ऐतिहासिक दृष्टि और ऐतिहासिक विवेचन का मार्क्सवादी दृष्टिकोण।''[21] ''वे मार्क्सवादी विचारक हैं, इसलिए उनकी इतिहास दृष्टि मार्क्सवादी व्याख्या से प्रेरित और प्रभावित है। फिर भी उनकी इतिहास दृष्टि पर विचार करना इसलिए आवश्यक है कि उन्होंने अनेक अवसरों पर ठेठ मार्क्सवादी विचारकों के मतों से अपने को अलग रखा है।''[22] अतः उनकी साहित्येतिहास दृष्टि की समझ के लिए साहित्येतिहास के मार्क्सवादी आधारों का विवेचन अपेक्षित है।

□□**आधार और अधिरचना –** मार्क्सवादी आलोचना एवं साहित्येतिहास लेखन में आधार और अधिरचना अथवा बुनियादी और ऊपरी इमारत (बेस एण्ड सुपर स्ट्रक्चर) की अवधारणा का केन्द्रीय महत्त्व है। राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना के एक प्रयास की भूमिका में कार्ल मार्क्स ने लिखा है कि ''उत्पादन सम्बन्धों का पूर्ण योग ही समाज का अर्थिक ढाँचा है – वह असली बुनियाद है जिस पर कानून और राजनीति का ऊपरी ढाँचा खड़ा होता है। . . .मनुष्यों की चेतना उसके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि उलटे उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है। . . .आर्थिक बुनियादी के बदलने के साथ समस्त बृहदाकार ऊपरी ढाँचा भी कमोवेश तेजी से बदल जाता है।''[23] मार्क्स की इस मूल अवधारणा की उनके अनुयायिों ने मनमानी व्याख्याएँ प्रस्तुत की जिनका एंगेल्स ने अपनी चिट्ठयों में अनेक जगह खण्डन करते हुए लिखा था कि, ''आर्थिक तत्त्व निर्णायक तत्त्व है लेकिन एकमात्र निर्णायक

तत्त्व नहीं है, केवल आधार ही अधिरचना को प्रभावित नहीं करता बल्कि अधिरचना भी आधार को प्रभावित कर सकती है।"[24] एंगेल्स ने यह स्वीकार किया कि "प्रबल विरोध के चलते हमें आर्थिक आधार पर अधिक बल देना पड़ा तथा समय, स्थान तथा मौका न मिलने के कारण हम अन्य तत्त्वों को उचित स्थान नहीं दे सके थे।"[25] वे इस बात से सख्त नाराज थे कि "जर्मनी के अनेक तरुण लेखकों के लिए 'भौतिकवादी' शब्द केवल एक खोखले फिकरे का काम देता है और बिना पर्याप्त अध्ययन किये हर चीज पर लेबल के रूप में चिपका दिया जाता है। मार्क्सवाद के सही विकास के लिए एंगेल्स चाहते थे कि समाज और उसके इतिहास का गम्भीर अध्ययन कर विभिन्न क्षेत्रों में नवीन अवधारणाएँ विकसित करनी चाहिए क्योंकि इस दिशा में गम्भीरता से काम करने वालों की अत्यधिक कमी है।"[26] कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत में डॉ॰ रामविलास शर्मा एंगेल्स की ही इच्छा पूर्ति कर रहे थे। मार्क्स और एंगेल्स उपर्युक्त विचारों की पृष्ठभूमि डॉ॰ रामविलास शर्मा की साहित्येतिहास दृष्टि के प्रमुख मार्क्सवादी आधारों पर अलग–अलग विचार करना उपयुक्त रहेगा। आधार और अधिरचना का सिद्धान्त मार्क्सवादी आलोचना का मूल है। उसके प्रति समझ के अन्तर के कारण डॉ॰ रामविलास शर्मा की साहित्यालोचना और साहित्येतिहास दृष्टि अपने समकालीन प्रगतिशील साहित्यकारों से अलग है।

□□**साहित्य की सापेक्ष स्वायत्तता –** साहित्य की सापेक्ष स्वायत्तता का आशय है कि साहित्य न तो पूर्णतः समाज–निरपेक्ष होता और न पूर्णतः समाज–सापेक्ष। वह अनेक स्थानों पर समाज से प्रभावित होता है, अनेक स्थानों पर समाज से अप्रभावी रहता है तथा अनेक स्थानों पर समाज को प्रभावित भी करता है। डॉ॰ रामविलास शर्मा साहित्य–विवेचन में सामाजिक परिस्थितियों को महत्त्वपूर्ण मानते हुए भी उसे न तो आर्थिक–सामाजिक सम्बन्धों का मानते हैं बल्कि वे मार्क्स एंगेल्स की मूल स्थापनाओं व इच्छा के अनुरूप साहित्य को सापेक्ष रूप से स्वतंत्र मानते हुए उसके अन्य तत्त्वों के महत्त्व और उनकी नियामक भूमिका पर विशेष बल देते हैं। उन्होंने अपनी इस मान्यता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "किसी भी युग को समझने के लिए आर्थिक सम्बन्धों को जानना जरूरी है; लेकिन साहित्य या कला इन सम्बन्धों की छाया मात्र नहीं है और सामाजिक जीवन का यथार्थ अपने संश्लिष्ट रूप में ही साहित्य और कला के प्रतिबिम्बित होता है।[27] साहित्य के साथ–साथ वे मानव चेतना की स्वायत्तता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि "न तो मनुष्य, न मानव–समाज, न समाज व्यवस्था आर्थिक सम्बन्धों का परिणाम मात्र है। . . .मानव चेतना सापेक्ष रूप से स्वतंत्र है, वह अपनी रचनात्मक क्षमता का परिचय भी देती है, किन्हीं परिस्थितियों में उसकी भूमिका – आर्थिक सम्बन्धों की तुलना में – गौण न होकर नियामक भी हो जाती

है।"[28] एक अन्य स्थान पर इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "मनुष्य के विचार उसकी सामाजिक स्थिति को प्रतिबिम्बित करते हैं। किन्तु मानव चेतना में यह क्षमता है कि वह इस सामाजिक स्थिति से ऊपर उठ सके, चिन्तन की भौतिक सीमाओं से ऊपर उठकर अपेक्षाकृत स्वतंत्र स्तर पर विकसित हो सके।. . . (लेकिन) इससे कला की समाज निरपेक्षता सिद्ध नहीं होती, भौतिक जीवन से उसकी सापेक्ष स्वायत्तता ही प्रमाणित होती है।"[29] वे सापेक्ष व निरपेक्षता के मध्य **'द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध'** को स्वीकार करते हैं।[30] क्योंकि "यदि मनुष्य परिस्थितियों का नियामक नहीं है तो परिस्थितियाँ भी मनुष्य की नियामक नहीं हैं। दोनों के सम्बन्ध द्वन्द्वात्मक है। यही कारण है कि साहित्य सापेक्ष रूप से स्वाधीन होता है।"[31]

साहित्य की सापेक्ष स्वायत्तता सिद्ध करने के लिए डॉ॰ शर्मा जिस तरह अधिरचना (साहित्य कला और संस्कृति आदि) को आर्थिक सम्बन्धों को प्रतिबिम्बि मात्र नहीं मानते उसी तरह अधिरचना के पूर्णतः परिवर्तित होने के सिद्धान्त को भी नहीं मानते हैं इसके साथ ही वे अधिरचना के सभी तत्त्वों में समान परिवर्तन को भी नहीं मानते। उनके मतानुसार "ऊपरी इमारत के कुछ तत्त्व तेजी से बदलते हैं जैसे लोगों का राजनीतिक दृष्टिकोण, कुछ बहुत धीरे या क्रमशः बदलते हैं जैसे मनुष्य का सौन्दर्यबोध।"[32] साहित्य का सौन्दर्यबोध अपेक्षाकृत स्थायी तत्त्व होता है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वह समाज निरपेक्ष है। डॉ॰ शर्मा स्पष्ट करते हैं कि "सौन्दर्यबोध एक संश्लिष्ट इकाई है। उसका सम्बन्ध व्यक्ति से, व्यक्ति का सम्बन्ध समाज से होने के कारण वह समाज निरपेक्ष हो ही नहीं सकता।"[33] साहित्य का सौन्दर्यबोध अनेक तत्त्वों का संगम है। जहाँ कुछ तत्त्व सामाजिक–आर्थिक सम्बन्धों पर निर्भर होने से तुरन्त परिवर्तनशील होते हैं, वे ही कुछ तत्त्व मनुष्य के भावभोव और इन्द्रियबोध से सम्बन्धित होने के कारण बहुत कुछ अपरिवर्तनशील होते हैं।[34] ये 'बहुत कुछ अपरिवर्तनशील तत्त्व' ही साहित्य की सापेक्ष स्वायत्तता को सिद्ध ही नहीं करते बल्कि उसे बनाये भी रहते हैं। "यांत्रिक भौतिकवाद से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को अलग करके उन्होंने साहित्य की जो सापेक्ष स्वायत्तता सिद्ध की है, वह भी एक महत्त्वपूर्ण स्थापना है।"[35]

□□**साहित्य के सामाजिक आधार की महत्ता –** यदि डॉ॰ रामविलास शर्मा साहित्य को आर्थिक सम्बन्धों का प्रतिबिम्ब मात्र नहीं मानते तो इसका यह अभिप्राय नहीं कि वे साहित्य के सामाजिक आधार को महत्त्वहीन मानते हैं। वे साहित्य को सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में देखने के पक्षधर हैं तथा लेखक की समझ के विकास लिए समाज अध्ययन को महत्त्वपूर्ण मातने हैं। उनका मानना है कि "सामाजिक विकास के नियमों को जानने से लेखक को वह पतवार मिल जाती है जिसके सहारे वह

जनता के विषाल सागर में अपनी नाव खे सकता है। समाजषास्त्र की पोथी पढ़ने में थोड़ा समय लगाने से वह सामाजिक घटनाओं, व्यक्तियों और वर्गों को उनके उचित सन्दर्भ में देखने की योग्यता पा सकता है।"[36] सामाजिक परिवेष का प्रभाव साहित्य पर पड़ता है। "साहित्य और कलाओं का गहरा सम्बन्ध सामाजिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक परिवेष से होता है। यदि यह परिवेष दूषित हो जाए या नष्ट कर दिया जाए तो साहित्य और कलाओं का ह्रास होता है।"[37] किसी भी विचारधारा के अध्ययन के लिए उसके सामाजिक स्रोतों की पड़ताल आवष्यक है क्योंकि "कोई विचार किसी ठोस सामाजिक परिस्थिति में ही पैदा होता है।"[38] साहित्य की विषयवस्तु समाज से ही प्राप्त होती है। क्योंकि "साहित्य किसी ऐसे शाश्वत सत्य का चित्रण नहीं कर सतका जो सामाजिक परिस्थितियों से परे हो।"[39] वे साहित्य की सामाजिकता को उसकी उपयोगिता से जोड़कर देखते हैं। उनकी दृष्टि में "प्रत्येक साहित्य सामाजिक ही होता है लेकिन देखना यह चाहिए कि वह समाज के विकास में साधक है या बाधक? सड़ी–गली समाज व्यवस्था के खिलाफ व्यक्तिवादी विद्रोह भी उन्हें स्वीकार है।"[40] असामाजिक माने जाने वाले मनोविज्ञान के प्रयोग को भी वे अनुचित नहीं मानते बषर्ते कि "अन्तर्मन का विष्लेषण निरपेक्ष न होकर समाज सापेक्ष हो।"[41]

डॉ॰ रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्य ही नहीं किसी भी भारतीय भाषा के साहित्य के इतिहास को उस भाषा–भाषी समाज के विकास और उसके गठन के सन्दर्भ में लिखने के पक्षधर है। वे प्रतिपादित करते हैं कि "किसी भाषा के साहित्य का इतिहास लिखना हो, इस बात पर विचार करना आवष्यक होगा कि उस भाषा के व्यवहार करने वाले मानव समाज के गठन का रूप कौनसा है। वह मानव समाज विकास की किस अवस्था में है, इसकी जानकारी के बिना उसकी भाषा के साहित्य के इतिहास का विवेचन नहीं किया जा सकता, उस साहित्य की सामाजिक विषय वस्तु का ऐतिहासिक महत्त्व निर्धारित नहीं किया जा सकता।[42]

उन्होंने भारतीय साहित्य एवं हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन सामाजिक गठन के अनुरूप रखने का सर्वदा मौलिक और विचारोत्तेजक प्रस्ताव प्रस्तुत किया है। वे संसार में किसी भी वस्तु को निरपेक्ष नहीं मानते। कहते हैं कि "संसार में जितनी वस्तुएँ है, सब एक–दूसरे से सम्बन्ध हैं। साहित्य समाज से सम्बन्ध है और एक देष का समाज, एक प्रदेष का समाज दूसरे देष के दूसरे प्रदेष के समाज से सम्बन्ध है। . . .कोई चीज निरपेक्ष रूप में बाह्य नहीं है और कोई चीज निरपेक्ष रूप में आन्तरिक भी नहीं है।"[43]

International Journal of Education and Science Research Review
March-April-2018, Volume-5, Issue-2 E-ISSN 2348-6457 P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

इस तरह हम देखते हैं कि डॉ॰ शर्मा साहित्येतिहास को समझने के लिए उसके सामाजिक आधार को अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानते हैं। साहित्य के अध्ययन, लेखन व विकास के लिए सामाजिक समझ एक अपरिहार्य उपकरण है। **डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी** यह कहना शतप्रतिषत सत्य है कि "साहित्य के सामाजिक आधार को विष्लेषित करने में उन्होंने जिस विवेक, निष्ठा, साहस, अध्ययनषीलता और वैचारिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है, वह श्लाध्य है।"[44]

□□साहित्य, विचारधारा और राजनीति – विचारधारा के कला और साहित्य से सम्बन्ध को लेकर दो धुर विरोधी विचार प्रचलित हैं। **टेरी ईगलटन** लिखते हैं कि "पहला यह कि साहित्य पूरी तरह से विचारधारा आश्रित है और वह केवल अपने समय की विचारधारा का प्रतिबिम्बन करता है। . . .दूसरे खेमे के विचारक साहित्य द्वारा विचारधाराओं को चुनौती देने की परिघटना को ही साहित्य की नई परिभाषा का आधार बना लेते हैं। साहित्य और विचारधारा के बारे में दोनों ही धारणाएँ मुझे काफी सरलीकृत लगती हैं।"[45] राजनीति, प्रयोजन मुखता और विचारधारा के सम्बन्ध में **बी.क्रिलोब** लिखते हैं कि "मार्क्स तथा एंगेल्स साहित्य को राजनीति से ऊपर रखने की प्रयत्नों तथा 'कला–कला के लिए' सिद्धान्त के कटु आलोचक थे। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि यथार्थवादी लेखकों की कृतियों को प्रगतिषील विष्वदृष्टि प्रतिबिम्बित करनी चाहिए, उन्हें प्रगतिषील विचारों से आतेप्रोत होना चाहिए तथा उन्हें सही मानों में समसामयिक समस्याओं से वास्ता रखना चाहिए। ठीक इस अर्थ में उन्होंने साहित्य में प्रयोजन्मुखता का स्वागत किया था, जिसे वे विचारधारात्मक तथा राजनीतिक प्रतिबद्धता मानते थे।"[46] स्पष्ट है कि मार्क्सवादी दृष्टिकोण से साहित्य में विचारधारा की केन्द्रीय भूमिका मानी गई है।

डॉ॰ रामविलास शर्मा साहित्य को न तो शुद्ध विचारधारात्मक रू मानते हैं और नहीं साहित्य को विचार शून्य मानते हैं बल्कि वे साहित्य में विचारबोध, भावबोध और इन्द्रियबोध का उचित अनुपात स्वीकार करते हैं। इसी तरह वे न तो साहित्य को राजनीति से दूर रखना चाहते हैं, और न साहित्य को राजनीति का पिछलग्गू बनाना चाहते हैं बल्कि साहित्य को राजनीति का पथ प्रदर्षक मानते हैं। अर्थात वे राजनीति और विचारधारा से साहित्य की सापेक्ष स्वायत्तता के पक्षधर हैं।

डॉ॰ रामविलास शर्मा मार्क्सवादी अवधारणा के विरुद्ध कला, साहित्य और संस्कृति को मात्र विचारधारात्मक रूप मानने से इंकार करते हुए लिखते हैं कि "कोई भी कला शुद्ध विचार धारा के अन्तर्गत नहीं आती, साहित्य भी नहीं आता। साहित्य विचार शून्य नहीं होता किन्तु शुद्ध विचारों से साहित्य को निर्माण नहीं होता। विचारों के साथ इन्द्रियबोध और भाव अनिवार्य रूप से आवष्यक है। विभिन्न वर्गों के

विचारों में ही नहीं उनके भावों और इन्द्रियबोध में भी अन्तर होता है।"[47] वे साहित्य को विचारधारा मात्र मानने के परिणामस्परूप साहित्यालोचना के एकांगी होने के खतरे की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि "कुछ लोग संस्कृति को विचारधारा मात्र मानते हैं, इसी धारणा के अनुरूप वे साहित्य को कभी–कभी चित्रकला और संगीत को भी विचारों का संकलन मात्र समझ बैठते हैं। उनकी आलोचना में विचारों की परख होती है, अन्य तत्त्व अछूते रह जाते हैं।" इसी क्रम में वे हिन्दी आलोचना को उद्धृत करते कि "आजकल भी प्रगतिषील कविता के उदाहरणों में आलोचकों द्वारा उद्धृत ऐसी पंक्तियों मिल जाती हैं जिन्हें पद्य कहना कठिन है, कविता तो दूर की बात है। इसका कारण कविता को विचारधारा मात्र समझना है, भावों, संस्कारों, सौन्दर्यबोध आदि से विचारधारा के सम्बन्ध को भुलादेना है।" इसी तरह की प्रवृत्तियों को वे मार्क्सवाद के विरुद्ध घोषित करते हुए लिखते हैं कि "काव्य के अनेक तत्त्वों को भुलाकर विचारधारा सम्बन्धी एक तत्त्व को ही महत्त्वपूर्ण समझना, विचारधारा को भी आर्थिक सम्बन्धों का प्रतिबिम्बि मानना, संस्कारों और कलात्मक सौन्दर्य की उपेक्षा करना–ये सब यांत्रिक भौतिकवाद के लक्षण है।"[48]

यदि रामविलास शर्मा साहित्य को विचारधारा मात्र मानने से इंकार करते हैं तो साहित्य को शुद्ध कलावादियों की तरह विचारधारा और वर्ग दृष्टि से रहित भी नहीं मानते क्योंकि "किसी भी युग का साहित्य उस समय के संसार और समाज के प्रति प्रचलित धारणाओं से अछूता नहीं रहा। साहित्यकार संसार और समाज के प्रति कोई न कोई दृष्टिकोण अपनाये बिना तो रचना कर ही नहीं सकता।"[49] वे विचारधारा के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी साहित्य के लिए संवेदनषीलता को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। एक साक्षात्कार में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "हम विचारधारा को नकार नहीं सकते। . . . सवाल यह है कि आप विचारधारा को कितना सही मानते हैं और काफी संवेदनषीलता से आपने उसका तारतम्य बिठाया है या नहीं। लेकिन अगर दोनों में चुनना हो तो मैं कहूँगा कि संवेदनषीलता पहले है।"[50]

साहित्य और राजनीति के सम्बन्ध में डॉ॰ रामविलास शर्मा के विचार अत्यन्त सन्तुलित और स्पष्ट हैं। वे मानते हैं कि "साहित्य का दायरा राजनीति के दायरे से बड़ा है, सारा साहित्य राजनीति हो, न तो यह सम्भव है, न वांछनीय है। किन्तु इस बहाने राजनीति को साहित्य के दायरे से निकालना गलत है।"[51] साहित्य के राजनैतिक उद्देष्य पर विचार करते समय वे साहित्य के स्वरूप का ध्यान रखते हुए लिखते हैं कि, "व्यवहार में मार्क्सवादी विचारक साहित्य और कला के राजनैतिक उद्देष्य पर जोर देते हैं। यह जोर अंषतः सही है किन्तु साहित्य और कला के सभी रूपों से हम, एक ही माँग नहीं कर सकते। . . .गोर्की की कविता, **'मृत्यु और लड़की'** से यह परिणाम निकालना कि सभी साहित्य राजनीतिक उद्देष्य

विहीन होना चाहिए, उतना ही गलत है, जितना कि उसके उपन्यास **'माँ'** से यह परिणाम निकालना कि सभी साहित्य राजनैतिक उद्देष्य युक्त होना चाहिए।"[52] "वे दरअसल जनता के हित में होने वाली राजनीति के पक्षधर हैं। वे साहित्य कोष राजनैतिक दावपेंचों के विरुद्ध हैं।"[53]

इस तरह हम कह सकते हैं कि रामविलास शर्मा एक ओर मार्क्सवादी अतिवाद और सरलीकरणों के विरुद्ध लिख रहे थे तो दूसरी साहित्य को शुद्ध मनोरंजन का साधन बनाने के भी विरुद्ध थे। वे साहित्येतिहास लेखन के लिए एक महत्त्वपूर्ण संकेत यह देते है कि "कि प्रत्येक युग में कोई विषेष वर्ग और उस वर्ग के प्रतिनिधि साहित्य निर्माण में अगुवाई करते हैं।"[54] इस पंक्ति में मार्क्स की यह ध्वनि की स्पष्ट सुनाई दे रही कि "सत्ताधारी वर्ग के विचार हर युग में सत्ताधारी विचार हुआ करते हैं, अर्थात् जो वर्ग समाज की सत्ताधारी भौतिक शक्ति होता है, वह साथ ही उसकी सत्ताधारी बौद्धिक शक्ति भी होता है।"[55] साहित्य के इतिहास लेखन में सत्ताधारी वर्ग और सत्ता विरोधी वर्ग के साहित्य की पहचान करना आवष्यक है।

□□**साहित्य में जनपक्षधरता –** जनपक्षधरता मार्क्सवादी दर्षन का केन्द्र बिन्दु है। मार्क्स का निष्कर्ष था कि "पिछले सभी युगों में एक चीज हर अवस्था में मौजूद थी–समाज के एक हिस्से द्वारा दूसरे हिस्से का शोषण।"[56] समाज में अनवरत जन हितैषी परिवर्तनों के बावजूद यह शोषण चक्र अनवरत रूप से आज तक चल रहा है – "सभ्यता का आगे की ओर प्रत्येक पग साथ ही असमानता की ओर भी पग होता है। समाज द्वारा अपने लिए स्थापित समस्त संस्थाएँ, जिनका सभ्यता के साथ–साथ उद्भव हुआ है, ऐसी संस्थाओं में बदल जाती हैं, जो अपने मूल उद्देष्य के सर्वथा विपरीत होती है।"[57] सदियों से जनता अपने हित रक्षण के उद्देष्य से अपना शासक चुनती आई है लेकिन 'प्रभुता पाया काहि मद नाहिं' की तर्ज पर सभी "षासक लाजिमी तौर पर जनता के उत्पीड़क बन जाते हैं। . . .शासक के सामने सब समान होते हैं। सबकी स्थिति समान रूप से शून्य की स्थिति होती है।"[58] शायद इसी स्थिति को लक्ष्य कर मार्क्स ने कहा था कि मजदूरों के पास खोने के लिए सिवाय बेडियों के और है ही क्या? आखिर 'मरता क्या न करता' वाली मनः स्थिति पीड़ितों को क्रांति के लिए तैयार करती है। "इस शून्य की स्थिति से उबारने के लिए मार्क्स तथा एंगेल्स ने ऐसा लेखक तथा कलाकार तैयार करने का प्रयास किया, जो क्लासकीय साहित्य की सर्वोत्तम परम्पराओं को आत्मसात करते हुए मुक्ति के लिए सर्वहारा वर्ग के संघर्ष में सक्रिय भाग ले क्रांतिकारी संघर्ष के अनुभवों तथा कार्यभारों की व्यापक समझ के आधार पर अग्रसर हों।"[59]

मार्क्सवाद मात्र सैद्धान्तिक दर्षन नहीं है। उसके व्यवहार पक्ष की सबसे महत्त्वपूर्ण और चरम कार्यवाही है शोषण मुक्त, समतावादी समाज की स्थापना। मार्क्स केवल दुनिया की व्याख्या करने को पर्याप्त नहीं मातने थे उनके असल मुद्दा था दुनिया को बदलने का डॉ॰ रामविलास शर्मा की कहते हैं कि "मार्क्सवाद एक क्रांतिकारी दर्षन हैं वह समाज को बदलने की वैज्ञानिक पद्धति है। . . .साहित्य दुनिया को बदलने का बहुत बड़ा साधन है। जिस हद तक वह साधन बनता है उस हद तक ही साध्य रूप में भी उसकी सफलता है।"[60] डॉ॰ शर्मा साहित्य की सोद्देष्ता के समर्थक हैं। वे साहित्य से अपेक्षा करते हैं कि वह शोषक और शोषित की स्पष्ट पहचान करें, शोषित जनता की समस्याओं को साहित्य में स्थान दे, जनता को प्रषिक्षित करें, जनता को नेतृत्त्व करें, जनविरोधी प्रवृत्तियों – सामन्तवाद, साम्राज्यवाद, पूँजीवाद का विरोध करें, जनता को असंगठित करने वाली प्रवृत्तियों– साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद तथा नारीवाद आदि का विरोध करें तथा जनवादी क्रांति का समर्थन कर अपनी सार्थकता सिद्ध करे। उनके अनुसार जपपक्षधरता साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है तथा वे चाहते थे कि साहित्य परम्परा में उन साहित्यकारों को स्थापित किया जाए जिन्होंने जनहित का लक्ष्य निर्धारित कर साहित्य रचना की थी।

डॉ॰ रामविलास शर्मा के अनुसार "प्रगतिषील लेखन के लिए सबसे बड़ी और पहली शर्त यह है कि वह अपने देष की जनता के प्रति सच्चा हो। प्रगतिषील साहित्यकार के लिए कला जनता की सेवा के लिए है, किन्हीं भी अनुभूतियों, किन्हीं भी भावनाओं के प्रति वफादारी दिखाने के लिए नहीं।"[61] उनकी दृष्टि में प्रगतिषील साहित्य और प्रतिक्रियावादी साहित्य की कसौटी जनपक्षधरता ही है। वे लिखते हैं कि "प्रगतिषील साहित्य जनता की सेवा करता है, उसके उत्पीड़कों–साम्राज्यवादियों, सान्मतों और पूँजीपतियों की सेवा नहीं करता। जनता के उत्पीड़कों की सेवा करने वाला साहित्य प्रतिक्रियावादी है।"[62] वे मनुष्य को सर्वोपरि मानते हुए लिखते हैं कि "तमाम सुन्दर वस्तुएँ, तमाम सुन्दर भाव–विचार मनुष्य के लिए हैं, उसकी सेवा करने के लिए, उसका हित साधने के लिए है। . . .साहित्य भी मनुष्य के लिए है, मनुष्य साहित्य के लिए नहीं है।"[63] "यदि जनता से लगाव हो तो गलत आलोचकीय दृष्टिकोण में भी सुधार सम्भव है।"[64]

डॉ॰ रामविलास शर्मा देख रहे थे कि अब शोषित जनता परिवर्तन और अपना हक चाहती है क्योंकि "मनुष्य ने युगों तक यातनाएँ सहकर आज की सभ्यता को जन्म दिया है। यातना अधिकांष जनता के भाग्य में पड़ी, उस यातना से सुख उठाना थोड़े से सम्पत्तिषाली लोगों के हाथ में रहा। यह युग मानव समाज के

विकास में एक विराट परिवर्तन का युग है। शोषण और ध्वंस की शक्तियाँ अपना विनाष सामने देख रही हैं।"[65] इसलिए "हर आलोचक का धर्म है कि वह राजनीतिक समस्याओं पर लिखकर जनता को जागरुक करे। उनके लेखन में युग की चेतना इस तरह प्रतिबिम्बित हो जिसके जनता में नया साहस उत्पन्न हो और उत्पीड़न के खिलाफ खड़ी हो सके।"[66] उन्हें जनता की संघर्ष क्षमता का पूरा भरोसा है और यह भी जानते हैं कि ईष्वर के अवतार अब नहीं ठग नहीं सकेंगे।"[67] वे शोषण की समाप्ति और सामाजिक परिवर्तन के लिए क्रांति को सत्य, न्यायपूर्ण और अचूक दवा के रूप में स्वीकार कर उसका समर्थन करते है।"[68] लेकिन वे क्रांति के नाम पर खून खराबे ओर आतंकवाद के विरुद्ध हैं क्योंकि वे यह भी जानते हैं कि "मनुष्य जाति का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। . . .पर इसके अलावा सभ्यता का इतिहास वर्ग सहयोग का इतिहास भी है।"[69] वे अतिवादों के परिणामों से परिचित मानते हैं कि संघर्ष का उद्देष्य शांति होना चाहिए अन्यथा "संघर्ष को संघर्ष के लिए बढ़ाना **'कला–काल के लिए'** वाले सिद्धान्त की तरह–किसी का उद्देष्य नहीं हो सकता।"[70]

संघर्ष के अभाव में शोषण का अन्त सम्भव नहीं। संघर्ष के लिए जनता में एकता और जागरुकता आवष्यक है। शासक और शोषक वर्ग कभी नहीं चाहता कि जनता में संगठन और जागरुकता हो। वह समाज के स्वाभाविक भेदों को हवा देकर उनकी एकता को खण्डित करता रहता है तथा गैर जरूरी मुद्दों को केन्द्र में लाकर जनता के मूलभूत मुद्दों से ध्यान हटाने का निरन्तर प्रयास करता है। डॉ॰ रामविलास शर्मा इन कूटनीतियों से पूरी तरह सावधान थे इसलिए अपने लेखन में निरन्तर जनता की एकता और षिक्षा को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वही कारण है कि वे संकीर्ण और विखण्डनवादी वाद और आन्दोलनों का खण्डन करते हुए लिखते हैं कि – "ब्राह्मणवाद, ठाकुरवाद, बनियावाद की तरह निम्नवर्गों का शूद्रवाद भी खतरनाक है क्योंकि वह वर्ग संघर्ष की जगह वर्ण संघर्ष को प्रतिष्ठित करता है। जो मजदूर वर्ग क्रांति का हिरावल दरत्ता है, उस वर्ग की एकता को पहले सम्प्रदायवाद, फिर यह वर्णवाद भीतर से छिन्न–भिन्न कर रहा है।"[71] वे दलित और नारी का उत्थान चाहते हैं लेकिन इनके नाम पर चल रहे वादों का सख्त विरोध करते हैं। वे यह मानने को तैयार नहीं की एक वर्ग की पीड़ा को दूसरे वर्ग का प्रतिनिधि अभिव्यक्ति नहीं दे सकता।"[72] वे अपने प्रिय कवि तुलसीदास की तरह नारी के दुःख से आहत हैं – "लेकिन नारी–उसे तो पराधीनता खा जाती है, सुख स्वाधीनता के लिए वह अपने पंख भी नहीं फड़फड़ा सकती।"[73]

जनता की सेवा के लिए साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों के प्रयासों से डॉ॰ शर्मा सन्तुष्ट नहीं हैं। उनकी स्वीकारोक्ति है कि "हमारे साहित्य को जनता की जैसी सेवा करनी चाहिए, . . .वह नहीं कर पा

रहा है।" बुद्धिजीवियों के महत्त्व से वे भलीभाँति परिचित थे। इसलिए लिखते हैं कि "दरअसल बुद्धिजीवियों की मदद के बिना अकेला मजदूर वर्ग न तो पूँजीवाद खत्म कर सकता है, न समाजवाद ला सकता है।"[74] लेकिन वे बुद्धिजीवियों की भूमिका से नाखुषी जताते हुए एक साक्षात्कार में कहते हें कि "लेकिन आज का बुद्धिजीवी है, उससे मुझे बहुत निराषा होती है। भीतर में बड़ा पस्त है वो उसे बिल्कुल किसी चीज के अन्दर आस्था नहीं रही है।"[75] वास्तविकता तो यह है कि जनहित के उद्देष्य से उन्होंने मार्क्सवाद को स्वीकार किया था और वे जीवन भर जनता के अडिग निर्भीक पुजारी बने रहे। वे साफ कहते हैं कि "लोक को न डर, परलोक को न सोच, देव सेवा न सहाय, गर्व धाम को न धन को, यह मेरा आदर्ष वाक्य है। तुलसीदास को जो कुछ होता है, राम के नाम पर होता था, वही अच्छा लगता था। देष और जनता के हित में जो कुछ होता है, वह मुझे अच्छा लगता है। इतना ही अन्तर है।"[76] उनकी निस्वार्थ, निर्भीक, निडर और अडिग जनपक्षधरता के सम्मुख हिन्दी के अनेक साहित्यकार नतमस्तक हैं। नामवर सिंह उन्हें सबसे अधिक किसान और मजदूर मानते हैं तथा कहते है कि "वे जनता के दुःख दर्द को कहीं अधिक समझते हैं इसलिए उनका मार्क्सवाद और मार्क्सवादी चिन्तन अमूर्त विचार नहीं है। यह भाव सम्पदा है।"[77]

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि जनपक्षधरता डॉ॰ रामविलास शर्मा के जीवन और लेखन का मूल आधार होने के कारण उनकी साहित्येतिहास दृष्टि का भी एक आधारभूत उपकरण है। वे जिस भी साहित्य और साहित्यकार का मूल्यांकन करने और साहित्य परम्परा में उसका स्थान निर्धारित करते समय जनपक्षधरता को एक कसौटी की तरह प्रयोग करते हैं।

□□साहित्य में यथार्थवाद – "अपने समय के क्रांतिकारी वैज्ञानिक अविष्कारों, औद्योगिक प्रगति एवं दर्षन की प्रखर निष्पत्तियों से प्रेरित और अनुप्राणित एवं सर्वांगपूर्ण जीवन दृष्टि तथा कलादृष्टि के रूप में, **'यथार्थवाद'** का उद्‌भव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ। . . .यथार्थवादी साहित्य चिन्तन का सबसे प्राणवान रूप मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन में दृष्टिगोचर होता है।"[78] "मार्क्स और एंगेल्स एक प्रवृत्ति तथा कलात्मक सृजन की एक विधि के रूप में यथार्थवाद को विष्वकला की सबसे बड़ी उपलब्धि मानते थे। एंगेल्स ने यथार्थवाद की सर्वमान्य कालरूपीय अवधारणा निरूपित की 'तफसील की सच्चाई का, आम परिस्थितियों में आम चरित्रों का सच्चाई भरा पुनर्सृजन है'।"[79] एंगेल्स के अनुसार यथार्थवाद मतलब है "ब्योरे के सही होने के अलावा, विषिष्ठ स्थितियों में प्रतिनिधि चरित्रों का विष्वसनीय प्रस्तुतीकरण।"[80]

जार्ज लुकाच के मतानुसार "यथार्थवाद मार्क्सवादी सौंदर्यषास्त्र का षिखर है। लेकिन वह प्रकृतिवाद या 'इन्द्रियगम्य तथ्यों की फोटो ग्राफिक पुनर्रचना का विरोध करता है।"[81] स्पष्ट है कि यथार्थवाद मार्क्सवादी साहित्य चित्रण की श्रेष्ठ व विष्वसनीय पद्धति है तथा मार्क्सवाद के श्रेष्ठ विद्वान इसमें किसी अतिवादी प्रवृत्ति का विरोध करते हैं।

डॉ॰ रामविलास शर्मा के समस्त लेखन का एक महत्त्वपूर्ण उद्देष्य है यथार्थवादी साहित्य परम्परा की पहचान और उसकी प्रतिष्ठा। **डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी** ठीक ही लक्ष्य करते हैं कि "जिस एक शब्द को डॉ॰ शर्मा ने सर्वाधिक महत्त्व दिया है। वह है – यथार्थ। इस शब्द के आगे और पीछे अन्य शब्दों को जोड़कर उन्होंने कई शब्द गढ़ लिये हैं। यथार्थवाद, यथार्थचित्रण, यथार्थजीवन, यथार्थबोध, यथार्थ का बढ़ाव, यथार्थवाद की बुलन्दी, क्रांतिकारी यथार्थवाद, नया यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद, संष्लिष्ट यथार्थवाद आदि अनेक प्रयोग उनकी समीक्षा में देखे जा सकते हैं।"[82] डॉ॰ शर्मा के लेखन में यथार्थवादी दार्षनिक परम्परा और यथार्थवादी साहित्य परम्परा दोनों को आसानी से देखा जा सकता है। ये दोनों परम्पराएँ एक–दूसरे की पोषक हैं उनकी अवधारणा स्पष्ट है कि "संसार में रहे बिना सौन्दर्य बोध सम्भव नहीं है और सौन्दर्यबोध के बिना कलात्मक सृजन सम्भव नहीं है। भारतीय दर्षन की मुख्य धारा यथार्थवादी है और वह कलात्मक सृजन की पोषक है।"[83] मार्क्सवादी दर्षन और यथार्थवादी साहित्य परम्परा दोनों का आधार यह भौतिक संसार है। इस तरह मार्क्सवाद और यथार्थवाद दोनों में गहरा रिष्ता ही नहीं बल्कि यथार्थवाद मार्क्सवाद की आधारषिला तथा पहचान भी है।

डॉ॰ रामविलास शर्मा साहित्य में भौतिक संसार की उपेक्षा करने वाली व्यक्तिवादी भाववादी साहित्य धारा का मुखर विरोध करते हैं तथा यथार्थवादी साहित्य परम्परा का खुला समर्थन करते हुए कहते हैं कि "जो साहित्य मनुष्य द्वारा मनुष्य के उत्पीड़न को छिपाता है, वह प्रचारक न दिखते हुए भी वास्तव में प्रतिक्रियावाद का प्रचारक होता है। जो साहित्य यथार्थ जीवन के इस सत्य को प्रकट करता है, वह वास्तव में गम्भीर साहित्य होता है।"[84]

डॉ॰ रामविलास शर्मा यथार्थवाद के नाम पर प्रचलित तमाम विकृतियों का सर्तक खण्डन करते हैं। उनके अनुसार यथार्थवाद न तो 'यौन सम्बन्धों का नग्न वर्णन है,' न वह 'फोटोग्रौफिक चित्रण हैं' न वह मात्र वैयक्तिक समस्याओं का चित्रण है, न वह कल्पना विरोधी है और न वह आदर्ष विरोधी है।"[85] उनके मतानुसार यथार्थवाद यथातथ्य वर्णन नहीं है। वे लिखते हैं कि "कवि का काम यथार्थ जीवन को

प्रतिबिम्बित करना ही होता तो वह प्रजापति का दर्जा न पाता। वास्तव में प्रजापति ने जो समाज बनाया है, उससे असन्तुष्ट होकर नया समाज बनाना कवि का जन्म सिद्ध अधिकार है।"[86] उनकी दृष्टि में यथार्थवाद को संकीर्ण दायरे में कैद करना अनुचित है। उसमें सामाजिक समस्याओं के चित्रण के अलावा प्रकृति चित्रण तथा संघर्ष के चित्रण के अलावा प्रेम के मुक्तक भी लिखे जा सकते हैं।"[87]

यथार्थवाद को लेकर डॉ॰ रामविलास शर्मा का दृष्टिकोण सन्तुलित, उदार, व्यापक और मार्क्सवाद की मूल अवधारणा के अनुकूल है। उनके यथार्थवाद में विरोधी विचारों का तालमेल नहीं बल्कि एक सुचिन्तित दृष्टिकोण स्पष्ट दिखाई देता है। वे स्वयं कहते हैं कि "उपर्युक्त विवेचन को समन्वयवाद न समझना चाहिए। यहाँ मेरा उद्देष्य यथार्थवाद की व्यापकता सिद्ध करना है। उसमें मानवीय स्नेह, प्रकृति प्रेम, गोचर सौन्दर्यबोध, साहित्य का कलात्मक और मानवजीवन के लिए आवष्यक है।"[88]उनका विष्वास था कि व्यक्तिवादी साहित्य धारा निर्जीव, विकृत और अस्वस्थ हो चुकी है जबकि यथार्थवादी साहित्य धारा अपनी सामाजिक सोद्देष्यता कलात्मक सौन्दर्यबोध की कसौटी पर अपने आपको सिद्ध कर अपना विकास कर रही है।"[89]

कहने की आवष्यकता नहीं कि डॉ॰ शर्मा ने साहित्य की परख के लिए एक सर्वांगपूर्ण यथार्थवादी कसौटी तैयार की थी जिसके आधार पर हिन्दी साहित्य का एक स्वस्थ इतिहास लिखा जाना सम्भव हो सकता है।

□□**वस्तु, षिल्प और सौन्दर्यबोध –** साहित्यालोचना की परम्परा में वस्तु और षिल्प की प्राथमिकता का विवाद उतना ही पुराना है जितनी की स्वयं साहित्यालोचना। मार्क्सवादी साहित्य दर्षन **'षिल्प'** की तुलना में **'वस्तु'** में साहित्य–सौन्दर्य की खोज करता है। "मार्क्स और एंगेल्स साहित्य को राजनीति के ऊपर रखने के प्रयत्नों तथा 'कला–कला के लिए' सिद्धान्त के कटु आलोचक थे।"[90] यहाँ मार्क्स के अनुयायियों ने अपनी अतिवादी प्रवृत्ति के चलते षिल्प की घोर उपेक्षा और वस्तु को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते हुए अपनी साहित्यालोचना की अवधारणाएँ विकसित की। यह बात अलग है कि स्वयं मार्क्स और एंगेल्स "फूहड़ प्रयोजनमुखता के कोरे नीति प्रवचन, कलात्मक विधि के स्थान पर उपदेष वाणी, जीवन्त बिम्बों का किन्हीं पिटे–पिटायें साँचों में रूपान्तरण किये जाने के–कट्टर विरोधी थे।"[91]

डॉ॰ रामविलास शर्मा ने जिस तरह **'कलावाद'** का विरोध किया उसी जोष के साथ उन्होंने **'वस्तुवाद'** का भी विरोध किया। उन्हें न तो कोरा **'कलात्मक चमत्कार'** पसन्द है और न कोरी **'उपदेष**

परकता'। वे न तो विचार की उपेक्षा चाहते हैं और न कलात्मक उपकरणों की वे साहित्य में सौन्दर्यबोध के लिए विचारबोध, भावबोध, इन्द्रिबोध और कलाबोध का कलात्मक समन्वय चाहते हैं। वे अपनी एक पुस्तक की भूमिका में "काव्य भाषा और रूप को विषय वस्तु से तथा रूप और विषय वस्तु को सामाजिक परिवेष से अलग करके देखने की प्रवृत्ति का विरोध करते है तथा पूरी पुस्तक में इस सिद्धान्त का खण्डन कर भिन्न दृष्टिकोण प्रतिपादित करते हैं।"[92] में भी वे अपने आदर्ष कवि तुलसीदास का ही सहारा लेते हुए कहते हैं कि **"गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न, न भिन्न**" तुलसी का यह कथन अक्षरषः सही है। यह द्वन्द्व है। कथ्य और षिल्प का झगड़ा ही गलत है। . . .कथ्य और षिल्प दोनों एक–दूसरे पर आश्रित हैं। . . .विचार को रूप की साधना करनी पड़ती है तब कविता का जन्म होता है।"[93] सरल और स्पष्ट शब्दावली में कहें तो "साहित्य में मनुष्य की बाह्य इन्द्रियाँ, हृदय और मस्तिष्क तीनों का समन्वय होता है। रूप, भावणा और विचार की एकता से कला की सृष्टि सम्भव है।"[94]

मार्क्स जिस तरह यूरोपीय प्राचीन साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करते हैं उसी तरह डॉ॰ शर्मा भी साहित्य–सौन्दर्य को मानदण्ड वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति और तुलसीदास से ग्रहण करते हैं उनकी दृष्टि में सौन्दर्य की खाोज रचना में नहीं जीवन में करनी चाहिए। अपने संकीर्णवाद लेख में वे लिखते है कि "अपनी सांस्कृतिक विरासत को भुला देना, अपने साहित्य की जनवादी परम्परा के इंकार करना जनता के जीवन संघर्ष से उदासीन होना . . .यही सब संकीर्णतावाद है। समाज में उदीयमान और मरणशील तत्त्वों के सतत संघर्ष से बाहर सौन्दर्य की सत्ता नहीं है। जो प्राणवान है, उदीपमान है, उसी का गुण है सुन्दरता।"[95] उनके लिए साहित्य और साहित्य का सौन्दर्य भोगी और विलासी लोगों काशगल नहीं बल्कि जीवन निर्माण का साधन में है। इसीलिए वे कहते हैं कि "जो मनुष्य अपनी मेहनत पर खुद जीता और दूसरों को जिलाता है, उसके लिए सौन्दर्य कर्ममय जीवन से बाहर नहीं होता। स्वस्थ मनुष्य भोजन से तृप्त होता है, लेकिन केवल स्वाद के लिए भोजन करना अस्वस्थ आदमी का काम है।"[96] उनके मतानुसार कलात्मक सौष्ठव के साथ–साथ उस साहित्य में व्यक्ति और समाज के विकास और प्रगति में सहायक होने की क्षमता भी होनी चाहिए। तभी वह अभिनन्दनीय हो सकता है। वे यह भी जानते हैं कि 'प्रगतिशील साहित्य रूप सौष्ठव का तिरस्कार करके दो कदम आगे नहीं चल सकता। साथ ही उनकी दृष्टि में "कोई भी कलात्मक रचना अपने सामाजिक आधार को छोड़कर गम्भीर और व्यापक नहीं हो सकती।"[97]

डॉ॰ रामविलास शर्मा **चिरंतन साहित्य सिद्धान्तों** की आड़ में युग–प्रवाह की उपेक्षा करने को अध्यात्मवाद की संज्ञा देते हैं। उनके अनुसार "साहित्य सिद्धान्तों में युगानुरूप बदलाव या बहाव ही

स्थायी कहा जा सकता है।"[98] अपनी मार्क्सवादी आस्था के चलते वे अनेक जगह वस्तु और शिल्प में वस्तु को शिल्प की तुलना में अधिक महत्त्व देते हैं। वे यह भी मानते हैं कि "जिनके पास विचार, भाव, यथार्थज्ञान हो वह प्रयत्न करके उसे कलात्मक रूप दे देगा।"[99] **हेगल** सम्बन्धी विवेचन में भी वे लिखते है, उसकी "यह सही है कि विषय वस्तु नियामक है, उसकी आवश्यकतानुसार रूप निर्मित होता है किन्तु यह भी सही है कि रूप विषय वस्तु का नियमन भी करता है।"[100] अर्थात वे वस्तु और शिल्प में **'द्वन्द्वात्मक'** सम्बन्ध मानते हैं।

वस्तुतः प्रगतिशील साहित्य **'कलावाद'** का धुर विरोधी स्वर लेकर आया था और डॉ॰ शर्मा उसके आधिकारिक प्रवक्ता थे इसलिए स्वाभाविक ही था कि वे **'वस्तु'** को अधिक महत्त्व देते और अनेक स्थान पर ऐसा किया भी है लेकिन वे न तो शिल्प की उपेक्षा करते हैं और न शिल्प और वस्तु के विवाद को उचित ही मानते हैं।

वस्तु, शिल्प और सौन्दर्य के सम्बन्ध में डॉ॰ रामविलास शर्मा के विचारों का विवेचन कर हम कह सकते हैं कि "सौन्दर्यबोध को एक संश्लिष्ट इकाई मानते हैं।"[101] वे किसी भी अतिवादी व्याख्या का विरोध करते हैं, सौन्दर्य के मानदंड साहित्यिक विरासत से प्राप्त करते हैं, साहित्य को जीवन संग्राम का हिस्सा मानते है इसलिए उसकी असली कसौटी भाषा, छन्द, विचार व उपदेश न होकर मानवीय अस्मिता की रक्षा है। **साहित्येतिहास परम्परा** में वही साहित्य उल्लेखनीय माना जायेगा जो जो कलात्मक सौन्दर्य के साथ–साथ जीवन सौन्दर्य की कसौटी पर खरा उतरता हो।

साहित्येतिहास के मार्क्सवादी आधारों, आधार और अधिरचना, साहित्य की सापेक्ष स्वायत्तता, साहित्य के सामाजिक आधार, साहित्य, विचारधारा और राजनीति, साहित्य की जनपक्षधरता साहित्य में यथार्थवाद तथा वस्तु–शिल्प और सौन्दर्यबोध का विवेचन कर हमने यह कहने का प्रयास किया है कि डॉ॰ रामविलास शर्मा की साहित्येतिहास दृष्टि के निर्माण में मार्क्सवादी चिन्तन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने न केवल मार्क्सवाद को उसकी विकृतियों से बचाया है बल्कि मार्क्स–एंगेल्स के विचारों और इच्छाओं के अनुरूप मार्क्सवादी अवधारणाओं के विकास में अविस्मरणीय योगदान किया। उन्हें मार्क्सवाद को भारतीय संस्करण तैयार करने के लिए सदैव याद किया जायेगा। उन्होंने हमें साहित्येतिहास लेखन के महत्त्वपूर्ण मार्क्सवादी उपकरण उपलब्ध कराये हैं।

संदर्भ सूची

1 एमिल बर्न्स – मार्क्सवाद क्या है? पृ॰ 03–04

2 सम्पा॰ अजय तिवारी – साक्षात्कार, पृ॰ 190–198

3 रामविलास शर्मा – विराम चिह्न, पृ॰ 229

4 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 16

5 रामविलास शर्मा – इतिहास बोध, अंक–1, वर्ष 3, 1992 उद्धृत राजेन्द्र चौपड़ा – साम्य, अंक–26, पृ॰ 175

6 रामविलास शर्मा – साहित्य : स्थायी मूल्य और मूल्याकंन, पृ॰ 22

7 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 170

8 जगदीश्वर चतुर्वेदी – साम्य, अंक 26, पृ॰ 57

9 सम्पा॰ अजय तिवारी – आज के सवाल और मार्क्सवाद, भूमिका, पृ॰ 398–399

10 रामविलास शर्मा – मित्र संवाद, पृ॰ 394

11 रामविलास शर्मा – साक्षात्कार, पृ॰ 17–19

12 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 32

13 नामवर सिंह – हिन्दी के प्रहरी डॉ॰ रामविलास शर्मा, सम्पा॰ विष्वनाथ त्रिपाठी, पृ॰ 418

14 सम्पा॰ विजय गुप्त – साम्य, अंक 26, पृ॰ 86–87

15 सम्पा॰ भरतसिंह – गौदारण, अंक 5, पृ॰ 27

16 सम्पा॰ भरतसिंह – गौदारण, अंक 5, पृ॰ 09–12

17 मैनेजर पाण्डेय – साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ॰ 201–204

18 सम्पा॰ अजय तिवारी – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 323

19 सम्पा॰ अजय तिवारी – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 372

20 सम्पा॰ अजय तिवारी – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 398–400

21 नामवर सिंह – हिन्दी के प्रहरी डॉ॰ रामविलास शर्मा, सम्पा॰ विष्वनाथ त्रिपाठी, पृ॰ 164

22 रामचन्द्र तिवारी – कृति चिन्तन और मूल्यांकन संदर्भ, पृ॰ 70

23 मार्क्स, एंगेल्स – साहित्य और कला, पृ॰ 45

24 मार्क्स, एंगेल्स – साहित्य और कला, पृ॰ 63

25 मार्क्स, एंगेल्स – साहित्य और कला, पृ॰ 60–61

26 मार्क्स, एंगेल्स – साहित्य और कला, पृ॰ 64

27 रामविलास शर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, पृ॰ 28

28 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 169–170

29 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 34–35

30 रामविलास शर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, पृ॰ 74

31 रामविलास शर्मा उद्धृत – रामचन्द्र तिवारी, कृति चिन्तन और मूल्यांकन संदर्भ, पृ॰ 73

32 रामविलास शर्मा – भाषा और समाज, पृ॰ 407

33 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 36

34 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 36

35 रामचन्द्र तिवारी – कृति चिन्तन और मूल्यांकन संदर्भ, पृ॰ 77

36 रामविलास षर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य– पृ॰ 46

37 रामविलास शर्मा – भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास, पृ॰ 341

38 डॉ॰ जयनारायण – कल के लिए, सम्पा॰, अंक 38, पृ॰ 77

39 रामविलास षर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य– पृ॰ 74

40 रामविलास शर्मा – विराम चिह्न, पृ॰ 33

41 रामविलास षर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य– पृ॰ 32

42 रामविलास षर्मा – भारतीय सामाजिक के इतिहास की समस्याएँ– भूमिका, पृ॰ 5

43 रामविलास शर्मा – विराम चिह्न, पृ॰ 309

44 रामचन्द्र तिवारी – कृति चिन्तन और मूल्यांकन संदर्भ, पृ॰ 78

45 टेरी ईगलटन – मार्क्सवाद और साहित्यलोचन, पृ॰ 36

46 मार्क्स, एंगेल्स – साहित्य और कला, पृ॰ 31

47 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 34, 35, 36

48 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 170–171

49 रामविलास शर्मा – लोक जीवन और साहित्य, पृ॰ 13

50 अजय तिवारी – आज के सवाल और मार्क्सवाद, सम्पा॰, भूमिका, पृ॰ 311, 312

51 रामविलास षर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य– पृ॰ 355–356

52 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 35

53 रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰

54 रामविलास शर्मा – लोक जीवन और साहित्य, पृ॰ 13

55 मार्क्स, एंगेल्स – साहित्य और कला, पृ॰ 71

56 मार्क्स, एंगेल्स – कम्युनिष्ट घोषणा पत्र उद्धृत साहित्य और कला, पृ॰ 75

57 मार्क्स, एंगेल्स – साहित्य और कला, पृ॰ 258

58 मार्क्स, एंगेल्स – साहित्य और कला, पृ॰ 259

59 मार्क्स, एंगेल्स – बी॰क्रिलोव साहित्य और कला, पृ॰ 40–41

60 रामविलास षर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य– पृ॰ 83

61 रामविलास शर्मा – विराम चिह्न, पृ॰ 32

62 रामविलास शर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य, पृ॰ 392–393

63 रामविलास शर्मा – लोक जीवन और साहित्य, रामविलास शर्मा, पृ॰ 2

64 डॉ॰ रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 393–394

65 रामविलास शर्मा – मानव सभ्यता का विकास, पृ॰ 11

66 डॉ॰ रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 397

67 रामविलास शर्मा – विराम चिह्न, पृ॰ 250–252

68 रामविलास शर्मा – अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, पृ॰ 108

69 रामविलास शर्मा – परम्परा का मूल्यांकन, पृ॰ 10

70 रामविलास शर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य, पृ॰ 28

71 रामविलास शर्मा – सदियों के सोये जाग उठे, पृ॰ 23

72 रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 94–96

73 रामविलास शर्मा – विराम चिह्न, पृ॰ 254–256

74 रामविलास षर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य– पृ॰ 84–89

75 रामविलास शमा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 251

76 रामविलास शर्मा – साक्षात्कार, पृ॰ 104

77 डॉ॰ रामविलास शर्मा – नामवर सिंह, सम्पा॰ विष्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी के प्रहरी, पृ॰ 419

78 षिवकुमार मिश्र – यथार्थवाद, भूमिका

79 बी॰ क्रिलोव, मार्क्स एंगेल्स – साहित्य और कला, पृ॰ 30–31

80 एंगेल्स – साहित्य और कला, पृ॰ 460

81 एंगेल्स – साहित्य और कला, पृ॰ 457

82 रामचन्द्र वर्मा – आधुनिक हिन्दी आलोचनाः संदर्भ और दृष्टि, पृ॰ 120

83 रामविलास शर्मा – भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास, पृ॰ 113

84 रामविलास षर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य– पृ॰ 29

85 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 19–20

86 रामविलास शर्मा – विराम चिह्न पृ॰ 142–143

87 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 23

88 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 25

89 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 25

90 बी॰ क्रिलोव – साहित्य और कला, पृ॰ 31

91 बी॰ क्रिलोव – मार्क्स एंगेल्स, साहित्य और कला, पृ॰ 32

92 रामविलास शर्मा – भाषा युग बोध ओर कवित, पृ॰ 5

93 रामविलास शर्मा – आज के सवाल और मार्क्सवाद, पृ॰ 394

94 रामविलास शर्मा – लोक जीवन और साहित्य, पृ॰ 11

95 रामविलास शर्मा – विराम चिह्न पृ॰ 140

96 रामविलास शर्मा – लोक जीवन और साहित्य, पृ॰ 1

97 रामविलास षर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य– पृ॰ 26, 27, 30

98 रामविलास शर्मा – काव्य भाषा और युगबोध, पृ॰ 9

99 रामविलास षर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य– पृ॰ 100

100 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 49

101 रामविलास शर्मा – आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 36

&&&&&&&&&